# रामचन्द्रका में अलंकार योजना

अलंकार का अर्थ है अलंकृत अथवा सुशोभित करने वाला। जिस साधन से काव्य को अलंकृत अथवा सुशोभित किया जाये। अलंकार काव्य का शोभा धायक तत्व है, इसे सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है, किन्तु अलंकार का काव्य में क्या स्थान है, इस विषय में मतभेद हैं। अलंकारवादी आचार्य अलंकारों को काव्य का अनिवार्य अंग मानते हैं और अलंकार विहीन काव्य की कल्पना को वे उष्णता-रहित अग्नि की कल्पना के समान उपहास्यास्पद बताते हैं। आचार्य जयदेव का कथन है–

'अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृतिः।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृतिः॥'

अर्थात्–जो आचार्य अनलंकृत शब्दार्थ को काव्य मानता है, वह यह क्यों नहीं मान लेता कि अग्नि में उष्णता नहीं होती। काव्य में अलंकारों के स्थान को लेकर अलंकारों की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की गई। एक के अनुसार जो अलंकृत करे, वह अलंकार है–'अलं करोतित्यलंकारः, और दूसरी के अनुसार जिससे अलंकृत किया जाये उसे अलंकार कहते हैं–'अलंकरोत्यनेन इत्यलंकारः'। इन दोनों व्युत्पत्तियों में प्रथम में अलंकार की अनिवार्यता स्वीकार की गई है और दूसरी में अननिवार्यता। संस्कृत-काव्यशास्त्र में इसी विषय को लेकर आचार्यों के दो दल हैं–एक अलंकारों को काव्य के लिए अनिवार्य नहीं मानता और दूसरा अनिवार्य मानता है।

केशव का सम्बन्ध दूसरे दल से है। इस दल के अन्य आचार्यों की भाँति केशव भी अलंकारों को काव्य का अनिवार्य धर्म मानते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार सुजाति, सुवर्ण और सुलक्षणी होने पर भी कविता की शोभा अलंकारों के अभाव में फीकी रहती है उसी प्रकार काव्य चाहे जितना रससिक्त हो, यदि उसमें अलंकारों का अभाव है तो वह शोभासम्पन्न नहीं हो सकता–

'जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुबृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई कबिता बनिता मित्त॥'

अतः स्वाभाविक है कि रामचन्द्रिका में अधिकाधिक अलंकारों का प्रयोग मिले। कई स्थानों पर तो कई अलंकार एक साथ मिले गये हैं। रामचन्द्रिका में प्रयुक्त कुछ अलंकार ये हैं–

**उपमा**–दो पदार्थों के उपमान-उपमेय भाव से समान धर्म के कथन को उपमा अलंकार कहते हैं; अर्थात् जहाँ वस्तुओं में विभिन्नता रहते हुए भी उनके धर्म, रूप, गुण, रंग, स्वभाव, आकार आदि की समता का वर्णन किया जाय। इसके दो भेद होते

हैं—पूर्णोपमा और लुप्तोपमा। जहाँ उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक शब्द द्वारा उक्त हों, वहाँ पूर्णोपमा होती है; और जहाँ उपमान, धर्म वाचक, उपमेय इन चारों में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा होती है। केशव ने पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। यथा—

'रामचन्द्र कटि सों पटु बाँध्यो। लीलैव हर को धनु साँध्यो॥
नेकु ताहि कर पल्लव सों छूबै। फूल मूल जिमि टूक कर्‌यो द्वै॥'

यहाँ पर फूल मूल जिमि टूक कर्‌यो' में पूर्णोपमा है। इसी प्रकार—

'बालक मृनालनि ज्यौं तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।'

में भी पूर्णोपमा अलंकार है। और—

केशव बिस्वामित्र के, रोसमयी दृग जानि।
सन्ध्या-सी तिहुँलोक के, किहिनि उपासी मानि॥'

यहाँ धर्मलुप्तोपमा अलंकार है।

**उत्प्रेक्षा**—जहाँ प्रस्तुत की—उपमेय की—अप्रस्तुत रूप में उपमान रूप में—संभावना की जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा अलंकार के मुख्य दो भेद हैं—वाच्या उत्प्रेक्षा और प्रतीयमान उत्प्रेक्षा। जहाँ मनु, मानो, जनु, जानो आदिवाचक शब्दों में से किसी एक वाचक शब्द का प्रयोग हो, वहाँ वाच्य उत्प्रेक्षा होती है। उसे उक्त विषया भी कहते हैं। और जहाँ वाचक शब्द का प्रयोग न हो, वहाँ प्रतीयमान उत्प्रेक्षा होती है। इसे अनुक्तविषया उत्प्रेक्षा भी कहते हैं। वाच्या उत्प्रेक्षा के प्रमुख भेद ये हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा और सापन्हूवोत्प्रेक्षा। एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में सम्भावना को वस्तूत्प्रेक्षा कहते हैं। अहेतु में हेतु की अर्थात् अकारण को कारण मानकर जो उत्प्रेक्षा की जाती है, उसे हेतूत्प्रेक्षा कहते हैं। अफल में फल की सम्भावना फलोत्प्रेक्षा कहलाती है और अपन्हुति-सहित उत्प्रेक्षा को सापन्हवोत्प्रेक्षा कहते हैं।

उत्प्रेक्षा केशव का प्रिय अलंकार है, इसीलिए रामचन्द्रिका में अन्य अलंकारों की अपेक्षा इस अलंकार का प्रयोग अधिक हुआ है। उत्प्रेक्षा में उपर्युक्त सभी भेद रामचन्द्रिका में मिल जाते हैं। यथा—

'नचति मंच-पंचालिका, कर संकलित अपार।
नाचति हैं जनु नृपन की, चित्त-वृत्ति सुकुमार॥'

जहाँ पर उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है। इसी प्रकार उत्प्रेक्षा के अन्य भेद भी आसानी से रामचन्द्रिका में खोजे जा सकते हैं।

रूपक—उपमेय में उपमान के निषेध-रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। इसके प्रमुख भेद हैं—सांग रूपक, निरंग रूपक, परम्परित रूपक और तादूप्य रूपक। केशव ने इस अलंकार का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। यथा—

**चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर-बानर अरुन मुख।**
**कीन्हो फुकि फहराय, सकल तारका कुसुम बिन॥'**

यहाँ 'गगन-तरु' और 'दिनकर-बानर' में निरंग रूपक अलंकार हैं। और—

**अति बदन सोभ सरसी सुरंग। तहूँ कमल नैन बासा तरंग॥**
**जनु जुबति चित्र बिभ्रम बिलास। तेइ भ्रमर भंवत रस रूप आस॥'**

यहाँ साँग रूपक है।

परिसंख्या—जहाँ किसी वस्तु का एक स्थान से निषेध करके किसी दूसरे स्थान पर स्थापन हो, वहां परिसंख्या अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा अलंकार की भाँति यह अलंकार भी केशव को अत्यन्त प्रिय है, अतः इसका प्रयोग भी रामचन्द्रिका में प्रचुरता से हुआ है। यथा—

**'बिचारमान ब्रह्मदेव अर्थमान मानिये, उदीयमान दृग सुख दीयमान जानिये॥**
**अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै, अपढ्यमान पापग्रन्थ पढ्यमान बेदवै॥'**

एक और उदाहरण देखिए—

**'अति चंचल जहँ चल दलै, बिधवा बनी न नारि।**
**मन मोहो ऋषिराज को, अद्भुत नगर निहारि।'**

विरोधाभास—जहाँ यथार्थतः विरोध न होकर विरोध के आभास का वर्णन हो; वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। केशव ने इस अलंकार का प्रयोग भी भावोत्पादक ढंग से किया है। यथा—

**'जदपि भ्रकुटि रघुनाथ को, कुटिल देखियत जोति।**
**तदपि सुरासुर बरन की, निरखि सुद्ध गति होति॥'**

यहाँ पर राम की भृकुटि की छवि को कुटिल बताया गया है और कहा है कि उसके देखने से सुर, असुर और नरों की मुक्ति हो जाती है। यही विरोधाभास है। और—

**'विषमय यह गोदावरी, अमृत के फल देति।**
**केशव जीवनहार को, दुख असेस हरि लेति॥'**

यहाँ पर विषमय गोदावरी को अमृत का फल देने वाली और जीवनहार के दुःखों को हरने वाली बताया गया है। यहाँ विरोध न होकर विरोध का आभास है क्योंकि 'विष' का अर्थ जल और 'जीवनहार' का अर्थ 'पानी पीने वाला' है।

परिकरांकुर—साभिप्रायः विशेष्य के कथन मे परिकरांकुर अलंकार होता है। यथा—

**'केशव—दुख क्यों हरि है। मुनि—हरि जू हरि है।'**

यहाँ 'हरि' साभिप्रायः विशेष्य है क्योंकि हरि का अर्थ है हरण करने वाला, नष्ट करने वाला।

अतिशयोक्ति—लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करने को अर्थात् प्रस्तुत को बढ़ा-चढ़ाकर कहने को अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, सम्बंधातिशयोक्ति, असम्बंधातिशयोक्ति और कारणातिशयोक्ति। जहाँ केवल उपमान के द्वारा उपमेय का वर्णन किया जाये वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है। जहाँ उपमेय और उपमान में अभिन्नता होते हुए भी भिन्नत्व का कथन किया जाये वहाँ भेदकातिशयोक्ति, जहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना की जाये वहाँ समबन्धातिशयोक्ति, जहाँ सम्बन्ध में असम्बन्ध की कल्पना की जाए वहाँ असम्बन्धतिशयेक्ति और जहाँ कारण और कार्य के पूर्वापर की विपरीतता हो वहाँ कारणातिशयोक्ति होती है। रामचन्द्रिका में इन सभी भेदों का प्रयोग है। उदाहरण के लिए सम्बन्धातिशयोक्ति का प्रयोग देखिए—

**'पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परिपूरन, बतादैं न बतावैं और उक्ति को।**
**दरसन देत जिन्हें दरसन समुझैं न, नेति-नेति कहैं बेद छाँडि आन युक्ति को।'**

यहाँ राम के विषय में असम्बन्धित बातों से सम्बन्ध की कल्पना है।

अपन्हुति—जहाँ प्रकृति का—उपमेय का—निषेध करके अप्रकृत का—उपमान का—आरोप किया गया जाय वहाँ अपन्हुति अलंकार होता है; अर्थात् जहाँ पर सच्ची बात को छिपाकर उसके स्थान पर किसी अन्य बात की प्रतिष्ठा की जाये। अपन्हुति के सात भेद हैं—शुद्धापन्हुति, कैतवापन्हुति, हेत्वापन्हुति, भ्रांत्यापन्हुति, पर्यस्तापन्हुति, छेकापन्हुति और विशेषापन्हुति। जहाँ वास्तविक उपमेय को निषेधात्मक शब्द द्वारा छिपाकर उपमान का आरोप किया जाय, वहाँ शुद्धापन्हुति होती है। इसे शाब्दी अपन्हुति भी कहते हैं जहाँ उपमेय का किसी ब्याज से निषेध किया जाये वहाँ कैतवापन्हुति, जहाँ कारण-सहित उपमेय का निषेध हो वहाँ हेत्वापन्हुति, जहाँ सत्य बात को प्रकट करके किसी की शंका को दूर किया जाय वहाँ भ्रान्त्यापन्हुति, जहाँ किसी वस्तु के धर्म का निषेध दूसरी वस्तु में उसके आरोप के लिए किया जाये वहाँ पर्यस्तापन्हुति, जहाँ किसी काम के प्रकट होने पर मिथ्या समाधान द्वारा उसे छिपाया जाय वहाँ छेकापन्हुति और जहाँ बिशेष प्रकार छिपाने के कार्य का वर्णन किया गया हो, वहाँ विशेषापन्हुति होती है। केशव द्वारा प्रयुक्त शुद्धापन्हुति का उदाहरण देखिए—

**हिमांसु सूर सी लगै सो बात बज्र सी बहै॥**
**दिसा जगैं कृसानु ज्यों बिलेप अंग को दहै॥**
**बिसेस कालराति सों कराल राति मानिये।**
**बियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये॥'**

यहाँ सीता के वियोग-काल का निषेध करके उस पर प्रलय-काल का आरोप किया गया है।

**विषम**—जहाँ बेमेल घटना का वर्णन हो, वहाँ विषम अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—प्रथम विषम, द्वितीय विषम और तृतीय विषम। जहाँ एक-दूसरे के विरुद्ध होने के कारण सम्बन्ध न घटे वहाँ प्रथम विशम, जहाँ क्रिया के विपरीत फल की प्राप्ति हो वहाँ द्वितीय विषम और जहाँ कार्य और कारण के गुणों और क्रियाओं के एक-दूसरे के विरुद्ध वर्णन किया गया हो, वहाँ तृतीय विषम होता है। यथा—

**'कुछ स्वारथ भो न भयो परमारथ, आये ह्वै बीर चले बनिता ह्वै।**

यहाँ वीरों को बनिता कहना विरोधी गुणों का वर्णन है। अतः यह तृतीय विषम अलंकार है।

**काव्यार्थापत्ति**—जिसके द्वारा दुष्कर कार्य की सिद्धि हो, उसके द्वारा सुगम कार्य की सिद्धि क्या कठिन है। जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो, वहाँ काव्यार्थपत्ति अलंकार होता है। यथा—

**'हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रवासी।**
**देखि फिरौं तब ही तब रावन सातों रसातल के जे विलासी॥**
**लैं अपने भुजदंड अखंड करौ छितिमंडल छत्र प्रभा सी।**
**जानै को केसव केतिक बार हौं सेस के सीसन दीन्ह उसासी॥'**

बाण रावण से अपनी भुजाओं के बल की महिमा बताता हुआ कह रहा है कि जिन भुजाओं से मैंने पृथ्वी को अनेक बार उठाकर शेषनाग को सुस्ताने का अवसर दिया है, उनसे यह शिवधनुष उठाना कोई बड़ी बात नहीं है।

**विशेषोक्ति**—जहाँ प्रबल कारण के होते हुए भी कार्य की सिद्धि न होने का वर्णन हो, विशेषोक्ति अलंकार होता है। यथा—

**'राच्छस लाखन साधन बीने। दुंदुभि दीह बजाइ नबीने॥**
**मत्त अमत्त बड़े अस बारे। कुंजर पुंज जगावन हारे॥'**

राक्षस कुम्भकर्ण को जगाने के लिये लाखों उपाय करते हैं। बड़े-बड़े नगाड़ों को बजाते हैं, अनेक मस्त हाथियों को उसके ऊपर चलाते हैं। इतने प्रबल साधन होते हुए भी कुम्भकर्ण की नींद नहीं खुलती। अतः यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है।

**सदेह**—जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध में सादृश्य होने से संदेह का वर्णन हो, वहाँ सदेह अलंकार होता है। यथा—

**'ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानो। किधौं जीभ दतावली मैं बखानो॥**
**किधौं घेरिके राहु नारीन लीनी। कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी॥'**

यहाँ सीता के विषय में अनेक सादृश्यमूलक कल्पनाएँ करके सदेह का वर्णन किया गया है।

असंगति—विरोध के आभास सहित कारण-कार्य की स्वाभाविक संगति के त्याग में असंगति अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—प्रथम असंगति, द्वितीय असंगति और तृतीय असंगति। एक ही काल में कारण और कार्य के पृथक्-पृथक् होने में प्रथम असंगति, कार्य और कारण के अन्यत्र वर्णन में द्वितीय असंगति और कार्य की प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करने के वर्णन में तृतीय असंगति अलंकार होता है। यथा—

'जब ते बैठे राज, राज; दशरथ मै।
सुख सोयो सुरराज, ता दिन सुरलोक मैं॥

यहाँ कारण और कार्य का अन्यत्र वर्णन है। अतः द्वितीय असंगति अलंकार है।

निदर्शना—जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध उनके बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का बोधक हो, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। इसके मुख्य तीन भेद हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय निदर्शना। प्रथम निदर्शना में वाक्य या पदार्थ में असम्भव सम्बन्ध के लिए उपमा की कल्पना की जाती है; द्वितीय निदर्शना वहां होती है जहाँ वाक्य या पदार्थ अपने स्वरूप और उसके कारण का सम्बन्ध अपनी सत् असत् का बोध कराये; तीसरी निदर्शना में उपमेय का गुण उपमान में अथवा उपमान का गुण उपमेय में आरोपित किया जाता है।

रामचन्द्रिका में इस अलंकार का भी अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। यथा—

'राम हत्यो मारीच जेहि, अरु ताड़का सुबाहु।
लछिमन को यह धनुष दै, तुम पिनाक को जाहु॥'

पर्याय—जहाँ एक ही वस्तु का अर्थात् एक आधेय का अनेक आधारों में होना पर्याय से वर्णित होता है, वहाँ पर्याय अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं—प्रथम पर्याय और द्वितीय पर्याय। जहाँ एक वस्तु के पर्याय से अनेक स्थानों में स्थिति वर्णित हो, वहाँ प्रथम पर्याय होता है और जहाँ अनेक वस्तुओं अर्थात् आधेयों का एक आधार में होना वर्णित हो, वहाँ द्वितीय पर्याय होता है।

रामचन्द्रिका से प्रथम पर्याय का उदाहरण प्रस्तुत है—

'ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुभिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डुलाय॥'

इन अलंकारों के अतिरिक्त सहोक्ति, दीपक, प्रहर्षण, पर्यायोक्ति, उदात्त, गूढोत्तर, स्वभावोक्ति, उल्लेख, पीहित, मुद्रा, विभावना, तुल्ययोगिता, सम्भावना, तद्गुण भ्रम, दृष्टान्त, लोकोक्ति आदि अनेक अर्थालंकारों का प्रयोग रामचन्द्रिका में हुआ है।

अर्थालंकारों की भाँति शब्दालंकारों का प्रयोग भी केशव ने प्रमुखता से किया है। उदाहरणार्थ कुछ शब्दालंकार प्रस्तुत हैं--

**वक्रोक्ति**—जहाँ कोई किसी बात को जिस अभिप्राय से करे, श्रोता उसका उस अभिप्राय से भिन्न अर्थ निकाले, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं—श्लेष वक्रोक्ति और काकुवक्रोक्ति। श्लेष वक्रोक्ति में अनेकार्थ वाची शब्दों से दूसरा अर्थ निकाला जाता है और काकुवक्रोकित में काकु अर्थात् कंठ-ध्वनि से अन्य अर्थ निकाला जाता है। रामचन्द्रिका से काकुवक्रोक्ति का यह उदाहरण प्रस्तुत है—

**'बहु भुज युत जोई। सबल कहिय सोई॥'**

यह रावण की बाणासुर प्रति उक्ति है। काकु से इसका यह अर्थ निकलता है कि बहुत भुजा वाला शक्तिमान नहीं कहा जा सकता; अर्थात् तुम शक्तिहीन हो।

**श्लेष**—जहाँ श्लिष्ट शब्दों से अनेक अर्थ का विधान किया जाय। इसके दो भेद होते हैं—अभंग श्लेष और सभंग श्लेष। अभंग श्लेष में अन्य अर्थ निकालने के लिए शब्दों के टुकड़े करने पड़ते हैं। रामचन्द्रिका में दोनों ही भेद मिलते हैं। यथा—

**'जहीं बारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज।**
**नहीं कियो भगवंत बिनु, संपत्ति सोभा साज॥'**

यहाँ वारुणी, द्विजराज और भगवंत द्वयर्थक शब्द हैं। यह अभंग श्लेष का उदाहरण है। और—

**'भौहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर' भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।**

यहाँ कालिका-पक्ष का अर्थ शब्दों को बिना तोड़े लग जाता है, किन्तु वर्षा-पक्ष के लिए शब्दों को तोड़ना पड़ता है। वर्षा-पक्ष में द्वितीय पंक्ति का रूप यह होगा—

**'भू ख नजराय जोति तड़ि तरलाई है।**

अतः यह सभंग श्लेष है।

**अनुप्रास**—जहाँ व्यंजनों की समता हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। इसके पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, वृत्त्यानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास। जहाँ अनेक वर्णों की एक बार समता हो, वहाँ छेकानुप्रास; जहाँ वृत्तिगत अनेक वर्णों की अनेक बार समता हो, वहाँ वृत्यानुप्रास; जहाँ कण्ठ तालु आदि का एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की समता हो, वहाँ श्रुत्यनुप्रास जहाँ शब्द और अर्थ की आवृत्ति में अभिप्राय से भेद हो, वहाँ लाटानुप्रास और जहाँ छन्द के अन्त में वर्णों की समता हो, वहाँ अन्त्यनुप्रास होता है। रामचन्द्रिका से, उदाहरणार्थ, लाटानुप्रास का उदाहरण प्रस्तुत है—

**'बल सागर लछिमन सहित, कपि सागर सर्मीर।**
**जस सागर रघुनाथ जू मेले सागर तीर॥'**

यहाँ 'सागर' शब्द की आवृत्ति है और अभिप्राय-भेद से इनके अर्थों में अन्तर है—

**पुनरुक्तिवदाभास**—जहाँ विभिन्न अर्थ वाले भिन्नाकार के पद सुनने में समानार्थी प्रतीत हों, वहाँ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार होता है। यथा—

'विषयी की ज्यों पुष्पसर, गति को हनत अनंग।
रामदेव त्योंही करी, परसुराम गति भंग।'

यहाँ 'पुष्पसर' और 'अनंग' समानार्थी प्रतीत होते हैं, किन्तु पुष्पसर का अर्थ है फूल के बाण और अनंग का अर्थ है कामदेव। अतः यहाँ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार है।

यमक—जहाँ निरर्थक वर्णों की भिन्नार्थक सार्थक वर्णों की पुनरावृत्ति या उनकी पुनः श्रुति हो, वहाँ यमक अलंकार होता है। इसके अनन्त भेद हैं। रामचन्द्रिका में इस अलंकार का प्रयोग अन्य अलंकारों की भाँति ही सार्थक है। यथा—

'तेलहु तूलहु पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराय जरी।'

यहाँ 'जरी लंक जराय' में प्रथम जरी का अर्थ है स्वर्ण-मंडित और द्वितीय जरी का अर्थ है—जल गई। दोनों आवृत्त पद सार्थक हैं। यहाँ यमक अलंकार है।

रामचन्द्रिका में अनेक छन्द ऐसे हैं जिनमें एक ही छन्द में अनेक अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यथा—

'ति न नगरी ति न नागरी, प्रति पद हंसक हीन।
जलन हार सोभित न जहँ, प्रकट पयोधर पीन॥'

इस दोहे में श्लेष, वक्रोक्तित, व्याजस्तुति और अनुप्रास अलंकार की अनुपम छटा एकसाथ विकीर्ण हो रही है। और—

'सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रगटी गुरू ग्यान गटी।
चहुं ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पंचवटी॥'

यहाँ अनुप्रास, यमक और ललितोपमा का सौन्दर्य है। इसी प्रकार—

'साँचों एक नाम हरि लीन्हें सब देख हरि, और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
बानर नहीं हौ तुस मेरे बानरस मस, बलीमुख सूर बलीमुख निजु गाये हौ।
साखामृग नाहीं बुद्धिबल के साखामृग, कैंधौं बेर साखामृग केशव को भाये हौ।
साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम, गये एक काज को अनेक करि आये हो।'

यहाँ परिकरांकुर, विधि, अपन्हुति, यमक, लाटानुप्रास और उल्लेख अलंकार की छटा दर्शनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचन्द्रिका की अलंकार-योजना काफी विस्तृत और समृद्ध है, किन्तु कहीं-कहीं कवि में अलंकारों के प्रति इतना दुराग्रह आ गया है कि उसने भावों की हत्या कर दी है। यथा—

'सुन्दर सेत सरोरुह मै करहाटक हाटक की द्युति को है।
तापर भौंरे भलो मनरोचक कोक बिलाचन की रुचि रोहै॥
देखि दई उपमा जलदेबिन दीरघ देवन के मन मोहै।
केसव केसवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै॥'

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रलोभन संवरण संवरण न कर सकने के कारण कवि ने ब्रह्म के सिर पर विष्णु को बैठा दिया है। यह कल्पना भावशून्य ही नहीं, उपहासास्पद भी है। इसी प्रकार, सीता से राम की वियोग-वेदना का वर्णन करते हुए हनुमान कहते हैं—

'दीरघ दरीन बसैं केसोदास केसरी ज्यों,
बेसरी को देखि बन करी ज्यौं कंपत हैं।
बासर की सम्पति उलक ज्यौं न चितबत,
चकवा ज्यों चंद चितैं चौगुनी चँपत हैं।'

यहाँ राम की उपमा उलूक से दी गई है जो उपर्युक्त कल्पना की भाँति भावशून्य और उपहासास्पद है। यह हिन्दी-साहित्य का सौभाग्य है कि ऐसी कल्पनाएँ केशव ने अधिक नहीं कीं।